जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- १७

भगवान शंकर क्या हैं ?

(प्रवचन)

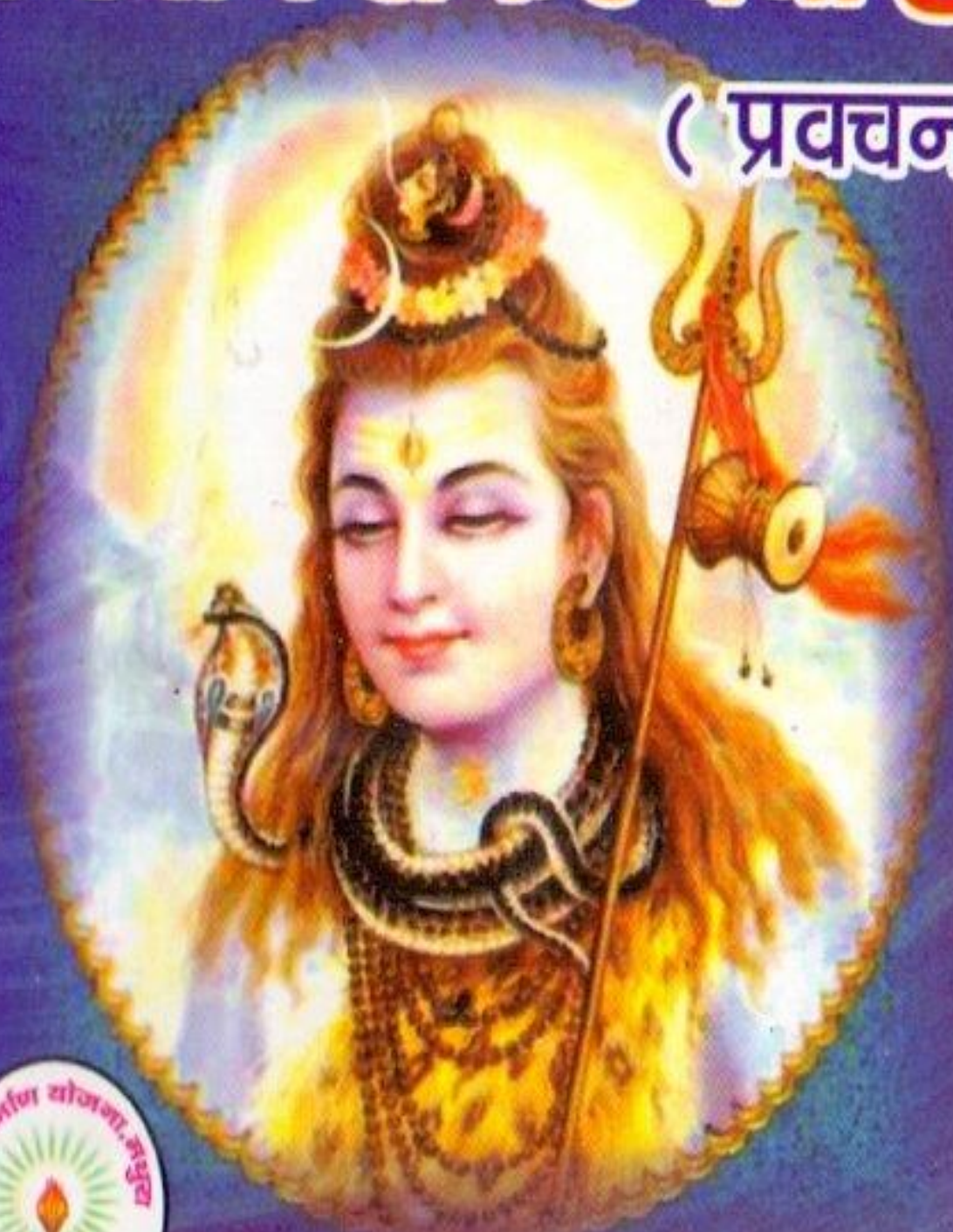

युग निर्माण योजना, मथुरा

भगवान शंकर क्या हैं ?

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ,

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रयोदयात्।

देवियो ! भाइयो !!

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

गोस्वामी तुलसीदास जी जब रामायण का निर्माण करने लगे तो उनके मन में एक विचार आया कि इतना बड़ा ग्रंथ जिसके जहाज पर बिठा करके संसार के प्राणियों का उद्धार किया जा सकता है, उसे बनाने के लिए मुझे क्या करना चाहिए ? इसके लिए किस शक्ति का सहारा लिया जाना चाहिए ? उन्होंने यह कहा कि भवानी शंकर की वंदना करनी चाहिए और उनकी सहायता लेनी चाहिए। उनकी शक्ति के बिना इतना बड़ा रामचरितमानस जिस पर बिठा करके अनेक मनुष्यों को भवसागर से पार

किया जा सकता है, कैसे संभव होगा? उन्होंने भवानी और शंकर की वंदना की। पश्चात उनके मन में एक और विचार आया कि आखिर भगवान शंकर हैं क्या? शक्ति कहाँ से आ जाती है? क्यों आ जाती है? उद्धार कैसे हो सकता है? ऐसे अनेक प्रश्न तुलसीदास जी के मन में उत्पन्न हुए? उनका समाधान भी उसी श्लोक में हुआ जिसका कि मैंने आप लोगों के सम्मुख विवेचन किया—'**भवानी शंकरौ वंदे**' भवानी और शंकर की हम वंदना करते हैं।

ये कौन हैं? '**श्रद्धा विश्वास रूपिणौ**' अर्थात श्रद्धा का नाम पार्वती और विश्वास का नाम शंकर। श्रद्धा और विश्वास—इन दोनों का नाम ही शंकर-पार्वती है। इनका प्रतीक विग्रह, मूर्ति हम मंदिरों में स्थापित करते हैं। इनके चरणों पर अपना मस्तक झुकाते हैं, जल चढ़ाते हैं, बेलपत्र चढ़ाते हैं, आरती करते हैं। यह सब क्रियाकृत्य हम करते हैं, लेकिन मूलतः शंकर क्या हैं? श्रद्धा और विश्वास। '**याभ्यां बिना न पश्यन्ति**'—जिनकी पूजा किए बिना कोई सिद्धपुरुष

भी भगवान को प्राप्त नहीं कर सकते। भवानी शंकर की इस महत्ता और माहात्म्य पर मैं विचार करता रहा, तब एक और पौराणिक कथा मेरे सामने आई।

पौराणिक कथा आती है कि एक संकट का समय था जब भगवान परशुराम को यह मालूम पड़ा कि सब जगह अन्याय, अत्याचार फैल गया, अनाचार फैल गया। इसके निवारण के लिए क्या करना चाहिए? परशुराम जी उत्तरकाशी गए और वहाँ भगवान शिव का तप करने लगे। तप करने के पश्चात भगवान शंकर ने उन्हें एक परशु दिया और कहा—अनीति का, अन्याय का और अत्याचार का इस संसार में से उच्छेदन किया जा सकता है और आपको करना चाहिए। भगवान शंकर की ऐसी महत्ता और ऐसी शक्ति का वर्णन पुराणों में पाया गया है, पर आज हम देखते हैं कि वह शक्ति कुंठित कैसे हो गई? हम शंकर की पूजा करते हैं, पर समस्याओं से घिरे हुए क्यों हैं? शंकर की शक्ति वरदान हो करके सामने क्यों नहीं आती? शंकर के भक्त होते हुए भी

हम किस तरीके से पिछड़ते और पददलित होते चले जा रहे हैं? भगवान हमारी कब सहायता कर सकते हैं? ये विचार मैं देर तक करता रहा।

अठारह पुराणों का अनुवाद मैंने संस्कृत से हिंदी में किया है। उसमें से शिव पुराण की एक कथा मुझे याद आई, जिसने हमारी शंका का समाधान कर दिया कि भगवान शंकर—सहायता क्यों नहीं करते हमारी? क्यों नहीं उनकी शक्ति का लाभ मिलता? क्यों उनके चमत्कार हमें दिखाई नहीं पड़ते? जबकि शंकर भगवान के भक्त जिन्होंने क्या से क्या अनुदान प्राप्त किए हैं, जो भी तप करने के लिए खड़ा हो गया, वह न जाने क्या से क्या प्राप्त करता चला गया? हम और आप जैसे शिव-उपासक उस शक्ति को प्राप्त न कर सकते हों—ऐसी बात नहीं, पर कहीं न कहीं चूक रह जाती है, कहीं न कहीं भूल रह जाती है। उस भूल को हमें निकालना ही पड़ेगा और निकालना ही चाहिए। इसके बिना अध्यात्म का पूरा लाभ नहीं मिल सकेगा और दुनिया के

सामने हम सिर ऊँचा उठाकर यह नहीं कह सकेंगे कि हम ऐसी शक्ति के उपासक हैं जो अपनी उँगली के इशारे से सारी दुनिया को हिला सकती है, तो गलती और चूक कहाँ हो गई? चूक और गलती वहाँ हो गई, जहाँ भगवान शिव और पार्वती का असली स्वरूप हमको समझ में नहीं आया। उसके पीछे जो फिलॉसफी है, वह समझ में नहीं आई, मात्र उसका बाहरी स्वरूप समझ में आ गया।

भगवान शंकर का भी एक कलेवर है और एक प्राण, एक बहिरंग स्वरूप है और एक अंतरंग स्वरूप। जब हम दोनों को मिला देंगे, तब पॉजीटिव और निगेटिव दोनों तारों को मिला करके जिस तरीके से स्पार्क उठते हैं और करेंट चालू हो जाता है। बहिरंग रूप के बारे में आप जानते हैं और जिस तक आप सीमित हो गए हैं, वह कलेवर है जो मंदिर में बैठा हुआ है, जिसके चरणों में हम मस्तक झुकाते हैं, जल चढ़ाते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, आरती उतारते हैं और जय जयकार करते हैं—यह बहिरंग कलेवर है

इसकी भी सख्त जरूरत है, परंतु यही सब कुछ नहीं है। हमें अंतरंग रूप के बारे में भी जानना चाहिए।

शिव का तत्त्वज्ञान

शिव भारतीय धर्म के प्रमुख देवता हैं। ब्रह्मा और विष्णु के त्रिवर्ग में उनकी गणना होती है। पूजा, उपासना में शिव और उनकी शक्ति की ही प्रमुखता है। उन्हें सरलता की मूर्ति माना जाता है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों के नाम से उनके विशालकाय तीर्थ स्वरूप देवालय भी हैं। साथ ही यह भी होता है कि खेत की मेंड़ पर किसी वृक्ष की छाया में छोटी चबूतरी बनाकर गोल पत्थर की उनकी प्रतिमा बना ली जाए। पूजा के लिए एक लोटा जल चढ़ा देना पर्याप्त है। संभव हो तो बेलपत्र भी चढ़ाए जा सकते हैं। फलों की अपेक्षा वे नहीं करते। न धूप-दीप, नैवेद्य, चंदन, पुष्प जैसे उपचार अलंकारों के प्रति उनका आकर्षण है।

क्या शिव कहीं हैं? अगर हैं तो उनकी क्रियापद्धति क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर बालविनोद की तरह नहीं दिया जाना चाहिए। उनका वर्चस्व

साधारण मनुष्यों जैसा नहीं है कि उन्हें रोटी, कपड़ा और मकान जैसी अनिवार्य साधन-सामग्री जुटानी पड़े। वे सर्वव्यापी और निराकार हैं। सूक्ष्म अपने आप में एक आकार है। इतना विस्तृत और व्यापक, जिसमें यह अपना विश्व और ब्रह्मांड सभी आसानी से समा सकें।

इस सृष्टि के प्राणी और सभी पदार्थ तीन स्थितियों में होकर गुजरते हैं—एक उत्पादन, दूसरा अभिवर्द्धन और तीसरा परिवर्तन है। सृष्टि की उत्पादक प्रक्रिया को ब्रह्मा, अभिवर्द्धन को विष्णु और परिवर्तन को शिव कहते हैं। मरण के साथ जन्म का यहाँ अनवरत क्रम है। बीज गलता है तो नया पौधा पैदा होता है। गोबर सड़ता है तो उसका खाद पौधों की बढ़ोत्तरी में असाधारण रूप से सहायक होता है। पुराना कपड़ा छोटा पड़ने या फटने पर उसे गलाया और कागज बनाया जाता है। नए वस्त्र की तत्काल व्यवस्था होती है। इसी उपक्रम को शिव कहा जा सकता है। वह शरीरगत अगणित जीव कोशाओं के मरते-जन्मते रहने से भी देखा जाता है

और सृष्टि के जरा-जीर्ण होने पर महाप्रलय के रूप में भी। स्थिरता तो जड़ता है। शिव को निष्क्रियता नहीं सुहाती। गतिशीलता ही उन्हें अभीष्ट है। गति के साथ परिवर्तन अनिवार्य है। शिवतत्त्व को सृष्टि की अनवरत परिवर्तन प्रक्रिया में झाँकते देखा जा सकता है। भारतीय तत्त्वज्ञान के अध्यवसायी कलाकार और कल्पना भाव-संवेदना के धनी भी रहे हैं। उन्होंने प्रवृत्तियों को मानुषी काया का स्वरूप दिया है। विद्या को सरस्वती, संपदा को लक्ष्मी एवं पराक्रम को दुर्गा का रूप दिया है। इसी प्रकार अनेकानेक तत्त्व और तथ्य देवी-देवताओं के नाम से किन्हीं कायकलेवरों में प्रतिष्ठित किए गए हैं। तत्त्वज्ञानियों के अनुसार देवता एक से बहुत बने हैं। समुद्र का जल एक होते हुए भी उसकी लहरें ऊँची-नीची भी दीखती हैं और विभिन्न आकार- प्रकार की भी। परब्रह्म एक है तो भी उसके अंग-अवयवों की तरह देववर्ग की मान्यता आवश्यक जान पड़ी। इसी आलंकारिक संरचना में शिव को ही मूर्द्धन्य स्थान मिला।

वे प्रकृतिक्रम के साथ गुँथकर पतझड़ के पीले पत्तों को गिराते तथा बसंत के पल्लव और फूल खिलाते रहते हैं। उन्हें श्मशानवासी कहा जाता है। मरण भयावह नहीं है और न उसमें अशुचिता है। गंदगी तो सड़न से फैलती है। काया की विधिवत अंत्येष्टि कर दी गई तो सड़न का प्रश्न ही नहीं रहा। हर व्यक्ति को मरण के रूप में शिवसत्ता का ज्ञान बना रहे, इसलिए उन्होंने अपना डेरा श्मशान में डाला है। वहीं बिखरी भस्म को शरीर पर मल लेते हैं, ताकि ऋतु प्रभावों का असर न पड़े। मृत्यु को जो भी जीवन के साथ गुँथा हुआ देखता है उस पर न आक्रोश के आतप का आक्रमण होता है और न भीरुता के शीत का। वह निर्विकल्प निर्भय बना रहता है। वे बाघ का चर्म धारण करते हैं। जीवन में ऐसे ही साहस और पौरुष की आवश्यकता है जिसमें बाघ जैसे अनर्थों और अनिष्टों की चमड़ी उधेड़ी जा सके और उसे कमर से कसकर बाँधा जा सके। शिव जब उल्लास विभोर होते हैं तो मुंडों की माला गले

में धारण करते हैं। यह जीवन की अंतिम परिणति और सौगात है जिसे राजा व रंक समानता से छोड़ते हैं। न प्रबुद्ध ऊँचा रहता है और न अनपढ़ नीचा। सभी एकसूत्र में पिरो दिए जाते हैं। यही समत्व योग है, विषमता यहाँ नहीं फटकती।

शिव को नीलकंठ भी कहते हैं। कथा है कि समुद्र मंथन में जब सर्वप्रथम अहंता की वारुणी और दर्प का विष निकला तो शिव ने उस हलाहल को अपने गले में धारण कर लिया, न उगला और न पीया। उगलते तो वातावरण में विषाक्तता फैलती, पीने पर पेट में कोलाहल मचता। मध्यवर्ती नीति यही अपनाई गई। शिक्षा यह है कि विषाक्तता को न तो आत्मसात करें, न ही विक्षोभ उत्पन्न कर उसे उगलें। उसे कंठ तक ही प्रतिबंधित रखें।

इसका तात्पर्य योगसिद्धि से भी है। योगी पुरुष अपने सूक्ष्मशरीर पर अधिकार पा लेते हैं जिससे उनके स्थूलशरीर पर तीक्ष्ण विषों का भी प्रभाव नहीं होता। उन्हें भी वह सामान्य मानकर पचा लेता है।

इसका अर्थ यह भी है कि संसार में अपमान, कटुता आदि दु:ख-कष्टों का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता। उन्हें भी वह साधारण घटनाएँ मानकर आत्मसात कर लेता है और विश्व कल्याण की अपनी आत्मिक वृत्ति निश्चल भाव से बनाए रहता है। दूसरे व्यक्तियों की तरह लोकोपचार करते समय इसका कोई ध्यान नहीं होता। वह निर्विकार भाव से सबकी भलाई में जुटा रहता है। खुद विष पीता है पर औरों के लिए अमृत लुटाता रहता है।

शिव का वाहन वृषभ है जो शक्ति का पुंज भी है, सौम्य-सात्त्विक भी। ऐसी ही आत्माएँ शिवतत्त्व से लदी रहती और नंदी जैसा श्रेय पाती हैं। शिव का परिवार भूत-पलीत जैसे अनगढ़ों का परिवार है। पिछड़ों, अपंगों, विक्षिप्तों को हमेशा साथ लेकर चलने से ही सेवा-सहयोग का प्रयोजन बनता है।

भगवान शंकर का रूप गोल बना हुआ है। गोल क्या है—ग्लोब। यह सारा विश्व ही तो भगवान है। अगर विश्व को इस रूप में मानें तो हम उस

अध्यात्म के मूल में चले जाएँगे जो भगवान राम और कृष्ण ने अपने भक्तों को दिखाया था। गीता के अनुसार जब अर्जुन मोह में डूबा हुआ था, तब भगवान ने अपना विराट रूप दिखाया और कहा, "यह सारा विश्व-ब्राह्मांड जो कुछ भी है मेरा ही रूप है।" एक दिन यशोदा कृष्ण को धमका रही थीं कि तैंने मिट्टी खाई है। वे बोले—नहीं मैंने मिट्टी नहीं खाई और उन्होंने मुँह खोलकर सारा विश्व-ब्रह्मांड दिखाया और कहा—यह मेरा असली रूप है। भगवान राम ने भी यही कहा था। रामायण में वर्णन आता है कि माता कौशल्या और काकभुशुंडि जी को उनने अपना विराट रूप दिखाया था। इसका मतलब यह है कि हमें सारे विश्व को भगवान की विभूति-भगवान का स्वरूप मानकर चलना चाहिए। शंकर की गोल पिंडी उसी का छोटा सा स्वरूप है जो बताता है कि वह विश्व-ब्रह्मांड गोल है, एटम गोल है, धरती माता, विश्व माता गोल है। इसको हम भगवान का स्वरूप मानें और विश्व के साथ वह

व्यवहार करें जो हम अपने लिए चाहते हैं दूसरों से तो मजा आ जाए। फिर हमारी शक्ति, हमारा ज्ञान, हमारी क्षमता वह हो जाए जो शंकर भक्तों की होनी चाहिए। शंकर भगवान के गले में पड़े हुए हैं काले साँप और मुंडों की माला। काले विषधरों का इस्तेमाल इस तरीके से किया है उन्होंने कि उनके लिए वे फायदेमंद हो गए, उपयोगी हो गए और काटने भी नहीं पाए।

शंकर जी की इस शिक्षा को हर शंकरभक्त को अपनी फिलॉसफी में सम्मिलित करना ही चाहिए, किस तरीके से उन्हें गले से लगाना चाहिए और किस तरीके से उनसे फायदा उठाना चाहिए? शंकर जी के गले में पड़ी मुंडों की माला भी यह कह रही है कि जिस चेहरे को हम बीस बार शीशे में देखते हैं, सजाने-सँवारने के लिए रंग पावडर पोतते हैं, वह मुंडों की हड्डियों का टुकड़ा मात्र है। चमड़ी जिसे ऊपर से सुनहरी चीजों से रँग दिया गया है और जिस बाहरी रंग के टुकड़ों को हम देखते हैं,

उसे उघाड़कर देखें तो मिलेगा कि इनसान की जो खूबसूरती है उसके पीछे सिर्फ हड्डी का टुकड़ा जमा हुआ पड़ा है। हड्डियों की मुंडमाला की यह शिक्षा है—नसीहत है मित्रो! जो हमको शंकर भगवान के चरणों में बैठकर सीखनी चाहिए।

शंकर जी का विवाह हुआ तो लोगों ने कहा कि किसी बड़े आदमी को बुलाओ, देवताओं को बुलाओ। उनने कहा नहीं, हमारी बरात में तो भूत-पलीत ही चलेंगे। रामायण का छंद है—"तनु क्षीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन तनु धरे।" शंकर जी ने भूत-पलीतों का, पिछड़ों का भी ध्यान रखा है और अपनी बरात में ले गए। आपको भी इनको अपने साथ लेकर चलना है। शंकर जी के भक्तो! अगर आप इन्हें साथ लेकर चल नहीं सकते तो फिर आपको सोचने में मुश्किल पड़ेगी, समस्याओं का सामना करना पड़ेगा और फिर जिस आनंद में और खुशहाली में शंकर के भक्त रहते हैं आप रह नहीं पाएँगे। जिन शंकर जी के चरणों में आप बैठे

हुए हैं उनसे क्या कुछ सीखेंगे नहीं ? पूजा ही करते रहेंगे आप। यह सब चीजें सीखने के लिए ही हैं। भगवान को कोई खास पूजा की आवश्यकता नहीं पड़ती।

शंकर भगवान की सवारी क्या है ? बैल। वह बैल पर सवार होते हैं। बैल उसे कहते हैं जो मेहनतकश होता है, परिश्रमी होता है। जिस आदमी को मेहनत करनी आती है, वह चाहे भारत में हो, इंग्लैंड, फ्रांस या कहीं का भी रहने वाला क्यों न हो—वह भगवान की सवारी बन सकता है। भगवान सिर्फ उनकी सहायता किया करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं। बैल हमारे यहाँ शक्ति का प्रतीक है, हिम्मत का प्रतीक है। आपको हिम्मत से काम लेना पड़ेगा और अपनी मेहनत तथा पसीने के ऊपर निर्भर रहना पड़ेगा, अपनी अकल के ऊपर निर्भर रहना पड़ेगा, आपके उन्नति के द्वार और कोई नहीं खोल सकता, स्वयं खोलना होगा। भैंसे के ऊपर कौन सवार होता है—देखा आपने शनीचर। भैंसा वह होता है जो

काम करने से जी चुराता है। बैल हमेशा से शंकर जी का बड़ा प्यारा रहा है। वह उस पर सवार रहे हैं, उसको पुचकारते हैं, खिलाते, पिलाते, नहलाते, धुलाते और अच्छा रखते हैं। हमको और आपको बैल बनना चाहिए, यह शंकर जी की शिक्षा है।

शिवजी का मस्तक ऐसी विभूतियों से सुसज्जित है जिन्हें हर दृष्टि से उत्कृष्ट एवं आदर्श कहा जा सकता है। मस्तक पर चंदन स्तर की नहीं, चंद्रमा जैसी संतुलनशीलता धारण की हुई है। शिव के मस्तक पर चंद्रमा है, जिसका अर्थ है—शांति, संतुलन। चंद्रमा मन की मुदितावस्था का प्रतीक है अर्थात योगी का मन सदैव चंद्रमा की भाँति प्रफुल्ल और उसी के समान खिला निःशंक होता है। चंद्रमा पूर्ण ज्ञान का प्रतीक भी है अर्थात उसे जीवन की अनेक गहन परिस्थितियों में रहते हुए भी किसी प्रकार का विभ्रम अथवा ऊहापोह नहीं होता। वह प्रत्येक अवस्था में प्रमुदित रहता है, विषमताओं का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सिर से गंगा की

जलधारा बहने से आशय ज्ञानगंगा से है। मस्तिष्क के अंतराल में मात्र 'ग्रे मैटर' न भरा रहे, ज्ञान-विज्ञान का भंडार भी भरा रहना चाहिए, ताकि अपनी समस्याओं का समाधान हो एवं दूसरों को भी उलझन से उबारें। वातावरण को सुख-शांतिमय कर दें। सिर से गंगा का उद्‌भव शिवजी की आध्यात्मिक शक्तियों पर, उनके जीवन के आदर्शों पर प्रकाश डालती है। गंगा जी विष्णुलोक से आती हैं। यह अवतरण महान आध्यात्मिक शक्ति के रूप में होता है। उसे सँभालने का प्रश्न बड़ा विकट था। शिवजी को इसके उपयुक्त समझा गया और भगवती गंगा को उनकी जटाओं में आश्रय मिला। गंगा जी यहाँ ज्ञान की प्रचंड आध्यात्मिक शक्ति के रूप में अवतरित होती हैं। लोक-कल्याण के लिए उन्हें धरती पर उतार लेने की यह प्रक्रिया इस कारण होती बताई गई है ताकि अज्ञान से भरे लोगों को जीवनदान मिल सके, पर उस ज्ञान को धारण करना भी तो कठिन बात थी जिसे शिव जैसा संकल्प शक्ति वाला महापुरुष ही

धारण कर सकता है अर्थात महान बौद्धिक क्रांतियों का सृजन भी कोई ऐसा व्यक्ति ही कर सकता है जिसके जीवन में भगवान शिव के आदर्श समाए हुए हों। वही ब्रह्मज्ञान को धारण कर उसे लोक हितार्थ प्रवाहित कर सकता है।

शिव के तीन नेत्र हैं। तीसरा नेत्र ज्ञानचक्षु है, दूरदर्शी विवेकशीलता का प्रतीक जिसकी पलकें उघड़ते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया। सद्भाव के भगीरथ के साथ ही यह तृतीय नेत्र का दुर्वासा भी विद्यमान है और अपना ऋषित्व स्थिर रखते हुए भी दुष्टता को उन्मुक्त नहीं विचरने देता, मदमर्दन करके ही रहता है।

वस्तुतः यह तृतीय नेत्र स्रष्टा ने प्रत्येक मनुष्य को दिया है। सामान्य परिस्थितियों में वह विवेक के रूप में जाग्रत रहता है पर वह अपने आप में इतना सशक्त और पूर्ण होता है कि काम वासना जैसे गहन प्रकोप भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। उन्हें भी जला डालने की क्षमता उसके

विवेक में बनी रहती है। यदि यह तीसरा नेत्र खुल जाए तो सामान्य मनुष्य भी बीज गलने जैसा दुस्साहस करके विशाल वटवृक्ष बनने का असंख्य गुना लाभ प्राप्त कर सकता है। तृतीय नेत्र उन्मीलन का तात्पर्य है—अपने आप को साधारण क्षमता से उठाकर विशिष्ट श्रेणी में पहुँचा देना।

तीन भवबंधन माने जाते हैं—लोभ, मोह, अहंता। इन तीनों को ही नष्ट करने वाले ऐसे एक अस्त्र की त्रिपुरारि शिव को आवश्यकता है जो हर क्षेत्र में औचित्य की स्थापना कर सके। यह शस्त्र त्रिशूल रूप में धारण किया गया—ज्ञान, कर्म और भक्ति की पैनी धाराओं का है।

शिव डमरू बजाते और मौज आने पर नृत्य भी करते हैं। यह प्रलयंकर की मस्ती का प्रतीक है। व्यक्ति उदास, निराश और खिन्न, विपन्न बैठकर अपनी उपलब्ध शक्तियों को न खोए, पुलकित-प्रफुल्लित जीवन जिए। शिव यही करते हैं, इसी नीति को अपनाते हैं। उनका डमरू ज्ञान, कला,

साहित्य और विजय का प्रतीक है। वह पुकार-पुकारकर कहता है कि शिव कल्याण के देवता हैं। उनके विचारों रूपी खेत में कल्याणकारी योजनाओं के अतिरिक्त और किसी वस्तु की उपज नहीं होती। विचारों में कल्याण की समुद्री लहरें हिलोरें लेती हैं। उनके हर शब्द में सत्यम्, शिवम् की ही ध्वनि निकलती है। डमरू से निकलने वाली सात्त्विकता की ध्वनि सभी को मंत्रमुग्ध सा कर देती है और जो भी उनके समीप आता है अपना सा बना लेती है।

शिव का आकार लिंग स्वरूप माना जाता है। उसका अर्थ यह है कि सृष्टि साकार होते हुए भी उसका आधार आत्मा है। ज्ञान की दृष्टि से उसके भौतिक सौंदर्य का कोई बड़ा महत्त्व नहीं है। मनुष्य को आत्मा की उपासना करनी चाहिए, उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। सांसारिक रूप, सौंदर्य और विविधता में घसीटकर उस मौलिक सौंदर्य को तिरोहित नहीं करना चाहिए।

गृहस्थ होकर भी पूर्ण योगी होना शिव जी के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना है। सांसारिक व्यवस्था को चलाते हुए भी वे योगी रहते हैं, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। वे अपनी धर्मपत्नी को भी मातृ-शक्ति के रूप में देखते हैं। यह उनकी महानता का दूसरा आदर्श है। ऋद्धि-सिद्धियाँ उनके पास रहने में गर्व अनुभव करती हैं। यहाँ उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि गृहस्थ रहकर भी आत्मकल्याण की साधना असंभव नहीं। जीवन में पवित्रता रखकर उसे हँसते-खेलते पूरा किया जा सकता है।

शिव के प्रिय आहार में एक सम्मिलित है—भांग, भंग अर्थात विच्छेद-विनाश। माया और जीव की एकता का भंग, अज्ञान आवरण का भंग, संकीर्ण स्वार्थपरता का भंग, कषाय-कल्मषों का भंग। यही है शिव का रुचिकर आहार। जहाँ शिव की कृपा होगी वहाँ अंधकार की निशा भंग हो रही होगी और कल्याणकारक अरुणोदय का पुण्य दर्शन मिल रहा होगा।

शिव को पशुपति कहा गया है। पशुत्व की परिधि में आने वाली दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों का नियंत्रण करना पशुपति का काम है। नर-पशु के रूप में रह रहा जीव जब कल्याणकर्त्ता शिव की शरण में आता है तो सहज ही पशुता का निराकरण हो जाता है और क्रमशः मनुष्यत्व और देवत्व विकसित होने लगता है।

महामृत्युंजय मंत्र में शिव को **त्र्यंबक** और **सुगंधि पुष्टि वर्धनम्** कहा गया है। विवेक दान को त्रिवर्ग कहते हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति भी त्र्यंबक है। इस त्रिवर्ग को अपनाकर मनुष्य का व्यक्तित्व प्रत्येक दृष्टि से परिपुष्ट व परिपक्व होता है। उसकी समर्थता और संपन्नता बढ़ती है। साथ ही श्रद्धा, सम्मान भरा सहयोग उपलब्ध करने वाली यशस्वी उपलब्धियाँ भी करतलगत होती हैं। यही सुगंध है। गुण-कर्म-स्वभाव की उत्कृष्टता का प्रतिफल यश और बल के रूप में प्राप्त होता है। इसमें तनिक

भी संदेह नहीं। इसी रहस्य का उद्घाटन महामृत्युंजय मंत्र में विस्तारपूर्वक किया गया है।

देवताओं की शिक्षाओं और प्रेरणाओं को मूर्तमान करने के लिए अपने ही हिंदू समाज में प्रतीक पूजा की व्यवस्था की गई है। जितने भी देवताओं के प्रतीक हैं उन सबके पीछे कोई न कोई संकेत भरा पड़ा है, प्रेरणाएँ और दिशाएँ भरी पड़ी हैं। अभी भगवान शंकर का उदाहरण दे रहा था मैं आपको और यह कह रहा था कि सारे विश्व का कल्याण करने वाले शंकर जी की पूजा और भक्ति के पीछे जिन सिद्धांतों का समावेश है हमको उन्हें सीखना चाहिए था, जानना चाहिए था और जीवन में उतारना चाहिए था। लेकिन हम उन सब बातों को भूलते हुए चले गए और केवल चिह्नपूजा तक सीमाबद्ध रह गए। विश्व-कल्याण की भावना को भी हम भूल गए। जिसे 'शिव' शब्द के अर्थों में बताया गया है। 'शिव' माने कल्याण। कल्याण की दृष्टि रखकर के हमको कदम उठाने चाहिए और हर क्रिया-कलाप एवं सोचने के तरीके का निर्माण करना

चाहिए—यह शिव शब्द का अर्थ होता है। सुख हमारा कहाँ है ? यह नहीं, वरन कल्याण हमारा कहाँ है ? कल्याण को देखने की अगर हमारी दृष्टि पैदा हो जाए तो यह कह सकते हैं कि हमने भगवान शिव के नाम का अर्थ जान लिया। '**ॐ नमः शिवाय**' का जप तो किया, लेकिन 'शिव' शब्द का मतलब क्यों नहीं समझा। मतलब समझना चाहिए था और तब जप करना चाहिए था, लेकिन हम मतलब को छोड़ते चले जा रहे हैं और बाह्य रूप को पकड़ते चले जा रहे हैं इससे काम बनने वाला नहीं है।

हिंदू समाज के पूज्य जिनकी हम दोनों वक्त आरती उतारते हैं, जप करते हैं, शिवरात्रि के दिन पूजा और उपवास करते हैं और न जाने क्या-क्या प्रार्थनाएँ करते कराते हैं। क्या वे भगवान शंकर हमारी कठिनाइयों का समाधान नहीं कर सकते ? क्या हमारी उन्नति में कोई सहयोग नहीं दे सकते ? भगवान को देना चाहिए, हम उनके प्यारे हैं, उपासक हैं। हम उनकी पूजा करते हैं। वे बादल के तरीके से हैं। अगर पात्रता हमारी

विकसित होती चली जाएगी तो वह लाभ मिलते चले जाएँगे जो शंकर भक्तों को मिलने चाहिए।

शिवरात्रि और उसकी कल्याणकारी शिक्षाएँ

हिंदू धर्म में जितने त्योहार मनाये जाते हैं ये सभी किसी न किसी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक या वैज्ञानिक आधार पर प्रचलित किए गए हैं। यह बात दूसरी है कि बहुत अधिक समय बीत जाने और राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने से उनका महत्त्व हमको पूर्ववत नहीं जान पड़ता, तो भी यदि हम उनको उचित रीति से मनाएँ, उनमें उत्पन्न हो गई त्रुटियों को दूर कर दें तो उनसे अभी बहुत लाभ उठाया जा सकता है। देश की साधारण जनता की उनके ऊपर हार्दिक आस्था है और इन त्योहारों और धार्मिक उत्सवों के द्वारा उनको बड़ी कल्याणकारी नैतिक और चारित्रिक शिक्षाएँ दी जा सकती हैं। यहाँ पर हम शिवरात्रि के व्रत के संबंध में कुछ विवेचन करेंगे।

आज हमारे देश में लाखों नर-नारी भगवान शिव के उपासक हैं। उपासना का अर्थ है—समीप बैठना। उपासक देव के गुणों का चिंतन, मनन और उन्हें ग्रहण करने का प्रयत्न करना, उस पथ पर अग्रसर होने की चेष्टा करना। सच्चे शिव के उपासक वही हैं, जो अपने मन में स्वार्थ भावना को त्यागकर परोपकार की मनोवृत्ति को अपनाते हैं, जब हमारे मन में यह विचार उत्पन्न होने लगते हैं, तो हम अपने आत्मीयजनों के साथ झूठ, छल, कपट, धोखा, बेईमानी, ईर्ष्या, द्वेष आदि से मुक्त हो जाएँगे। यदि शिवरात्रि व्रत के दिन हम इस महान पथ का अवलंबन नहीं लेते तो शिव का व्रत और पूजन केवल लकीर पीटना मात्र रह जाता है। उससे कोई विशेष लाभ नहीं होता।

पिछली पंक्तियों में शिवरात्रि की स्थूल कथा का वर्णन किया गया था, जिसका सूक्ष्म आशय यह है कि जिसमें यह सारा जगत शयन करता है, जो विकाररहित है वह शिव है। जो सारे जगत को अपने

भीतर लीन कर लेते हैं वे ही भगवान शिव हैं। 'शिव महिम्नस्तोत्र' में एक जगह लिखा है, "महासमुद्र रूपी शिवजी का एक अखंड परतत्त्व है। इन्हीं की अनेक विभूतियाँ अनेक नामों से पूजी जाती हैं। यही सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान हैं, यही व्यक्त-अव्यक्त रूप से क्रमशः सगुण ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म कहे जाते हैं तथा यही 'परमात्मा', 'जगदात्मा', 'शंकर', 'रुद्र' आदि नामों से संबोधित किए जाते हैं। यह भक्तों को अपनी गोद में रखने वाले 'आशुतोष' हैं। यही त्रिविधि तापों का शमन करने वाले हैं तथा यही वेद और प्रणव के उद्‌गम हैं। इन्हीं को वेदों ने 'नेति-नेति' कहा है। साधन पथ में यही ब्रह्मवादियों के ब्रह्म, सांख्य-मतावलंबियों के पुरुष तथा योगपथ में आरूढ़ होने वालों की प्रणव की अर्द्धमात्रा है।"

जो सुखादि प्रदान करती है वह रात्रि है, क्योंकि दिनभर की थकावट को दूर करके नवजीवन का संचार करने वाली यही है। 'ऋग्वेद' के रात्रिसूक्त में इसकी

बड़ी प्रशंसा की गई है, कहा है, "हे रात्रे! अशिष्ट जो तम है वह हमारे पास न आवे।" शास्त्र में रात्रि को नित्य-प्रलय और दिन को नित्य-सृष्टि कहा गया है। एक से अनेक की और कारण से कार्य की ओर जाना ही सृष्टि है और इसके विपरीत अनेक से एक और कार्य से कारण की ओर जाना प्रलय है। दिन में हमारा मन, प्राण और इंद्रियाँ हमारे भीतर से बाहर निकल बाहरी प्रपंच की ओर दौड़ती हैं और रात्रि में फिर बाहर से भीतर की ओर वापस आकर शिव की ओर प्रवृत्ति होती है। इसी से दिन सृष्टि का और रात्रि प्रलय की द्योतक है। समस्त भूतों का अस्तित्व मिटाकर परमात्मा से आत्म-समाधान की साधना ही शिव की साधना है। इस प्रकार शिवरात्रि का अर्थ होता है, वह रात्रि जो आत्मानंद प्रदान करने वाली है और जिसका शिव से विशेष संबंध है। फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में यह विशेषता सर्वाधिक पाई जाती है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार उस दिन चंद्रमा सूर्य के निकट होता है। इस कारण उसी समय जीवरूपी चंद्रमा का परमात्मा

रूपी सूर्य के साथ भी योग होता है। अतएव फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को की गई साधना से जीवात्मा का शीघ्र विकास होता है।

शिवजी के रूप की एक दूसरी व्याख्या है। वह यह है कि जहाँ अन्य समस्त देवता वैभव और अधिकार के अभिलाषी बतलाए गए हैं, वहाँ शिवजी ही एकमात्र ऐसे देवता हैं, जो संपत्ति और वैभव के बजाय त्याग और अकिंचनता का वरण करते हैं। अन्य देवता जहाँ सुंदर रेशमी वस्त्रों से अलंकृत किए जाते हैं, वहाँ शिवजी सदा के हरिछाल पहने भस्म लपेटे दीनजन के रूप में रहते हैं। इसी त्याग और अपरिग्रह के कारण वे देवताओं में महादेव कहलाते हैं। इस प्रकार शिवजी का आदर्श हमको शिक्षा देता है कि यदि परमात्मा ने हमको योग्यता और शक्ति दी है तो हम उसका उपयोग शान-शौकत दिखलाने के बजाय परोपकार और सेवा के लिए करें। शिवजी का उदाहरण यह भी प्रकट करता है कि जिसे जितनी अधिक शक्ति मिली है, उसका उत्तरदायित्व भी उतना ही अधिक

होता है। जिस प्रकार समुद्र मंथन के समय हलाहल विष निकलने पर उसे पीने का साहस शिवजी के सिवाय और कोई न कर सका उसी प्रकार हमें भी यदि परमात्मा ने विशेष धन, बल, विद्या आदि प्रदान किए हैं तो उनका उपयोग दीन-दुखी और कष्ट ग्रसित लोगों के उपकारार्थ ही करना चाहिए।

एक विदेशी विद्वान ने लिखा है कि ऋग्वेद व अथर्ववेद ने शिव के रुद्र रूप को मंगलमय बताया है। समस्त वैदिक साहित्य में उन्हें अग्नि का रूप माना गया है। अग्नि और शिव के नामों में परस्पर घनिष्ठ संबंध है। सारे महाभूतों में अग्नि ही एक ऐसा तत्त्व है जो भय को सहन नहीं कर सकता। अग्नि का गुण संहार न समझकर रचना मानना अधिक युक्तियुक्त है। अग्नि के इन दोनों स्वरूपों से मनुष्य की वास्तविकता की भी परीक्षा हो जाती है। यहाँ पर हम यह भी कह देना आवश्यक समझते हैं कि अग्नि का संबंध गायत्री से भी है और इस महामंत्र में अग्नि की सारी शुभ शक्तियाँ पुंजीभूत हैं।

'गायत्री-मंजरी' में 'शिव-पार्वती संवाद' आता है, जिसमें भगवती पूछती हैं—"हे देव! आप किस योग की उपासना करते हैं, जिससे आपको परम सिद्धि प्राप्त हुई है?" शिव इस संसार में आदि-योगी थे, योग के सभी भेदों को मालूम कर चुके थे। उन्होंने उत्तर दिया—"गायत्री ही वेदमाता है और पृथ्वी की सबसे पहली और सबसे बड़ी शक्ति है। वह संसार की माता है। गायत्री भूलोक की कामधेनु है। इससे सब कुछ प्राप्त होता है। ज्ञानियों ने योग की सभी क्रियाओं के लिए गायत्री को ही आधार माना है।"

इस प्रकार विदित होता है कि भगवान शंकर हमें गायत्री-योग द्वारा आत्मोत्थान की ओर अग्रसर होने का आदेश देते हैं पर पिछले कुछ समय से लोग इस तथ्य को भूल गए हैं और उन्होंने भंग पीना तथा बढ़िया पकवान बनाकर खा लेना ही शिवरात्रि के व्रत का सारांश समझ लिया है। मनोरंजन के लिए स्वांग, तमाशे, गाने के साधन रह गए हैं।

शंकर भगवान के स्वरूप को जैसा कि मैंने आपको निवेदन किया, इसी प्रकार से सारे पौराणिक कथानकों, सारे देवी-देवताओं में संदेश और शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं। काश! हमने उनको समझने की कोशिश की होती, तो हम प्राचीनकाल के उसी तरीके से नर-रत्नों में एक रहे होते, जिनको कि दुनिया वाले तैंतीस करोड़ देवता कहते हैं। ३३ करोड़ आदमी हिंदुस्तान में रहते थे और उन्हीं को लोग कहते थे कि वे इनसान नहीं देवता हैं, क्योंकि उनके ऊँचे विचार और ऊँचे कर्म होते थे। वह भारतभूमि देवताओं की भूमि थी और रहनी चाहिए। आपको यहाँ देवताओं के तरीके से रहना चाहिए। देवता जहाँ कहीं भी जाते हैं, वहाँ शांति, सौंदर्य, प्रेम और सन्मति पैदा करते हैं। आप लोग जहाँ कहीं भी जाएँ, वहाँ आपको ऐसा ही करना चाहिए। आप लोगों ने अब तक मेरी बात सुनी, बहुत-बहुत आभार आप सब लोगों का।

ॐ शांतिः

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)